भाग्य और पुरूषार्थ

Bhagya Aur Purusharth

इस संसार में कुछ व्यक्ति भाग्यवादी होते हैं और कुछ केवल अपने पुरूषार्थ पर भरोसा रखते हैं। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि भाग्यवादी व्यक्ति ईश्वरीय इच्छा को सर्वोपरि मानते हैं और अपने प्रयत्नों को क्षीण मान बैठते हैं। ये विधाता का ही दूसरा नाम भाग्य को मान लेते हैं। भाग्यवादी कभी-कभी अकर्मण्यता की स्थिति में भी आ जाते हैं। उनका कथन होता है कि हम कुछ नहीं कर सकते, सब कुछ ईश्वर के अधीन है। हमें उसी प्रकार परिणाम भुगतना पड़ेगा जैसे भगवान चाहेगा। भाग्योदय शब्द में भाग्य प्रधान है। एक अन्य शब्द है- सूर्योदय। हम जानते हैं कि उदय सूरज का नहीं होता। सूरज तो अपनी जगह पर रहता है, चलती-घूमती तो धरती ही है। फिर भी सूर्योदय हमें शुभ और सार्थक मालूम होता है। भाग्य भी इसी प्रकार का है। हमारा सुख सही भाग्य की तरफ हो जाए तो इसे भाग्योदय मानना चाहिए।

कर्मठ व्यक्ति सदैव कार्यरत रहता हे। परिश्रम करने पर भी जब उसे अपेक्षित सफलता नहीं मिलती, तब भी वह अपना धैर्य नहीं खोता। वह अपने मन में संतोष रखता है और अधिक उत्साह के साथ काम में जुट जाता है। संस्कृत में एक उक्ति है-

“कार्याणि उद्यमेन हि सिध्यन्ति मनोरथः न

सुप्तस्य सिंहस्य मुखे मृगाः न प्रविशन्ति।।”

अर्थात् “उद्यम से ही कार्य सिद्ध होते हैं, इच्छा करने से नहीं, क्योंकि सोए हुए शेर के मुख में हिरण प्रवेश नहीं करते। शेर को भी शिकार के लिए हाथ-पैर मारने पड़ते हैं।”

भाग्यवादी प्रायः यह तर्क दिया करते हैं कि भाग्य पर किसी का वश नहीं चलता। मजदूर सारा दिन पसीना बहाकर भी सूखी रोटी पाता है जबकि साहूकार गद्दी पर बैठकर भी सभी प्रकार के सुख भोग लेता है। कहा भी गया है- “करम गति टारे नाहीं टरै।” भाग्य ने राजा हरिशचन्द्र तक को श्मशान घाट की नौकरी करवा दी और भीम जैसे पराक्रमी को

रसोइया बनवा दिया। भाग्य के कारण ही श्रीरामचंद्र जी को सिंहासन पर बैठने के स्थान पर वन-वन खाक छाननी पड़ी।

पुरूषार्थी व्यक्ति अपने परिश्रम के बल पर कार्य सिद्ध कर लेना चाहता है। पुरूषार्थ वह है जो पुरूष को सप्रयास रखे। पुरूष का अर्थ पशु से भिन्न है। बल-विक्रम पशु में अधिक होता है, लेकिन पुरूषार्थ पशु की चेष्टा के अर्थ से अधिक भिन्न और श्रेष्ठ है। वासना से पीड़ित होकर पशु में अद्भुत पराक्रम देखा जाता है किंतु यह पुरूष से ही संभव है कि वह आत्मविसर्जन से पराक्रम कर दिखाए।

भाग्योदय शब्द में हम इसी सार को पहचानें। भाग्यवादी बनना दूसरी चीज है, उसमें हम भाग्य को अपने से ऊपर नहीं मानते हैं। भाग्य का यह मानना बहुत ओछा और अधूरा होता है। इसे मानने से सचमुच ही पुरूषार्थ की हानि होती है। पर भाग्य से अपने आपको अलग मानने का हमें अधिकार ही कहाँ है? भाग्य के प्रति अवज्ञा रखना अपने शेष के प्रति अलग आवज्ञाशील होने के बराबर है। भाग्य को न मानना जो सचमुच सीमाहीन भाव से है।

हम देखते हैं कि बहुत से लोग हाथ-पैर पटक रहे हैं, दिन-रात जोड़-तोड़ में लगे रहते हैं। कोशिश में कोई कमी न रहने पर भी उन्हें कई बार उपेक्षित सफलता नहीं मिल पाती। ऐसा आखिर क्यों होता है? कोशिश को पुरूषार्थ में सिद्धि मानें तो यह दृश्य नहीं दिखाई देना चाहिए कि हाथ पैर पटकने वाले लोग व्यर्थ निष्फल रह जाएँ। यदि वे यह कह उठें कि भाग्य ही उल्टा है तो इसमें गलती नहीं मानी जाएगी।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पुरूषार्थ और कर्म का मार्ग ही सर्वोत्तम है। उसी पर चलते हुए हम अपने भाग्य के निर्माता बन सकते हैं। मैथिलीशरण गुप्त जी ने पुरूषार्थ के महत्त्व को दर्शाते हुए लिखा है-

न पुरूषार्थ बिना वह स्वर्ग है

न पुरूषार्थ बिना अपवर्ग है

न पुरूषार्थ बिना क्रियता कहीं

न पुरूषार्थ बिना प्रियता कहीं।

सफलता वर तुल्य वरो उठो।

पुरूष हो पुरूषार्थ करो, उठो।।

पुरूषार्थ से ही भाग्य बनता है। पुरूषार्थ और भाग्य का मेल साधकर चलने से हमें उपेक्षित सफलता प्राप्त हो सकती है। खाली पुरूषार्थ अहंकार उत्पन्न करता है और निरा भाग्यवादी होना अकर्मण्य बनाता है।